**ओ३म्**

**‘महर्षि दयानन्द का भारत के यथार्थ इतिहास पर महत्वपूर्ण उपदेश’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 महर्षि दयानन्द (1825-1883) का सारा जीवन ईश्वर की खोज, मृत्यु पर विजय, योग, अध्ययन-अध्यापन, उपदेश, वेद-धर्म प्रचार, शास्त्रार्थ, समाज सुधार व अनुमानतः सन् 1857 के देश की आजादी के लिए संग्राम में गुप्त रूप से कार्य करने में व्यतीत हुआ था। महर्षि दयानन्द बाल ब्रह्मचारी थे। वह जन्म से ही प्रतिभाशाली, सुदृण व स्वस्थ शरीर, गौर वर्ण, आकर्षक व्यक्तित्व वाले व सत्य के प्रति दृण आस्थावान थे। महर्षि दयानन्द जी की मातृभाषा गुजराती थी। उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया था और इस भाषा के वार्तालाप, प्रवचन-उपदेश करने व लेखन करने में उन्हें पूरा अधिकार व सिद्धहस्ताता प्राप्त थी। महाभारत काल के बाद देश के वेदों के वह शीर्षस्थ विद्वान थे। उनकी तुलना का वेदों का विद्वान महाभारत काल व उनसे पूर्व व अद्यावधि भी इतिहास के पन्नों पर अंकित नहीं है। वेद ही उनके जीवन का आधार था। उनके सभी कार्य वेदों से प्रेरित व संचालित थे। उन्होंने मध्याकालीन व बाद के ब्राह्मणों ने वेदों के जो मिथ्यार्थ कर उसे कलंकित किया था, उस कलंक को पूरी तरह धोकर शुद्ध व निर्मल स्वरूप प्रदान किया। आज स्थिति यह है कि वेदों की अन्तःसाक्षी के आधार पर कहा जा सकता है कि वेदों के समान कोई भी धर्म-मत-सम्प्रदाय का ग्रन्थ इस पृथिवी पर नहीं है। वेद सर्वोपरि हैं एवं सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना व सुनना-सुनाना ही एकमात्र परम पुनीत मानव मात्र का यथार्थ धर्म है। वह जहां भी जाते थे, शुद्ध व सरल संस्कृत ही बोला करते थे। यद्यपि सभी विद्वान संस्कृत समझते थे परन्तु जब वह साधारण जनता में संस्कृत में उपदेश करते थे तो उन्हें संस्कृत से हिन्दी के अनुवादक की आवश्यकता होती थी। इस कार्य के लिए वह पौराणिक विद्वानों की सेवायें लेते थे जो स्वामी जी के कहे गये शब्दों को ही अनुवाद न कर उनके विचारों को अपनी मान्यताओं के अनुरूप तोड़ते मरोड़ते थे। अतः ब्रह्म समाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन के परामर्श पर उन्होंने आर्यभाषा हिन्दी का प्रयोग करना आरम्भ किया। इसके कुछ काल बाद उन्होंने अपना मुख्य दिव्य ग्रन्थ **‘सत्यार्थप्रकाश’** प्रकाशित कराया। यह ग्रन्थ उनके द्वारा पण्डितों को बोलकर लिखाया गया था। लेखन के लिए उनके पास ब्राह्मण लेखक थे जिन्होंने यत्र तत्र उनके बोले गये अभिप्राय के विरूद्ध अपनी मान्यताओं के वाक्यों को प्रविष्ट कर दिया। स्वामी जी के पास अवकाश न होने के कारण न तो वह इस ग्रन्थ को लिखवाने के बाद उन लेखकों से सुन पाये और न हि छपने से पूर्व प्रूफ देख पाये थे। इस कारण प्रकाशित होने के पश्चात पाठकों ने उन्हें कुछ अशुद्धियां अवगत कराई थी। इस मुख्य व अन्य कुछ कारणों से उन्होंने कुछ समय बाद इस ग्रन्थ का दूसरा शुद्ध संशोधित संस्करध्स भी तैयार कर प्रकाशित कराया जो आजकल सर्वत्र उपलब्ध होता है। प्रथम संस्करण को आदिम सत्यार्थ प्रकाश भी कहा जाता है। इसी प्रथम संस्करण से हम आज उनका एकादश समुल्लास में प्रस्तुत देश के प्राचीन यथार्थ इतिहास पर एक धर्मोदेश प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे पाठक इतिहास विषयक कुछ नये तथ्यों से न केवल परिचित हो सकें अपितु महर्षि के इतिहास विषयक ज्ञान व उनकी भाषा से भी कुछ कुछ परिचित हो सकें। इस लेख के शेष भाग आगे के लेखों में जारी रखेंगे।

**मनमोहन कुमार आर्य**

उनका धर्मोपदेश प्रस्तुत है-**‘सरस्वतीदृषद्वत्योदेवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते।’ (मनुस्मृति 2/17)।** सरस्वती जो कि गुजरात और पंजाब के पश्चिम भाग में नदी है, उससे लेके नैपाल के पूर्वभाग की नदी से लेके समुद्र तक इन दोनों के बीच में जो देश है, सो आर्यावर्त्त देश है और वे देवनदी कहाती है। अर्थात् दिव्य देश के प्रान्त भाग में होने से देव नदी इनका नाम है। सो देश देव निर्मित है अर्थात् दिव्य गुणों से रचित है, क्योंकि भूगोल के बीच में ऐसा श्रेष्ठ देश कोई नहीं है, जिस देश में सब श्रेष्ठ पदार्थ होते हैं और छः ऋतु यथावत् वर्तमान होते हैं और केवल सुवर्ण रत्न पैदा होते हैं। इस देश में जिसका राज्य होता है, वह दरिद्र होय तो भी धन से पूर्ण हो जाता हैै। इसी हेतु इसका नाम आर्यावर्त्त है, आर्य नाम श्रेष्ठ मनुष्य और श्रेष्ठ पदार्थ इनसे युक्त अर्थात् आर्यावर्त्त है। इस हेतु इस देश का नाम आर्यावर्त कहते हैं।

**एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।**

**स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।। (मनुस्मृति 2/20)**

 इस देश में अग्रजन्मा नाम सब श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न जो पुरुष उत्पन्न होवें (उनका है), उससे सब भूगोल की पृथिवी के मनुष्य शिक्षा अर्थात् विद्या तथा संसार के सब व्यवहारों का यथावत् विज्ञान (प्राप्त) करें। इससे क्या जाना जाता है कि प्रथम इस (देश) में मनुष्यों की सृष्टि भई (हुई) थी। पीछे सब द्वीप-द्वीपान्तर में सब मनुष्य फैल गए, क्योंकि पृथिवी में जितने मनुष्य हैं, वे इस देश वालों से विद्यादिक शिक्षा ग्रहण करें और सब देश भाषाओं का मूल जो संस्कृत (है) सो आर्यावर्त्त ही में सदा से चला आता है। आजकाल भी कुछ-कुछ देखने में आता है, परन्तु फिर भी सब देशों में संस्कृत का प्रचार अधिक है। जर्मनी और विलायत आदिक देशों में संस्कृत के पुस्तक इतने नहीं मिलते जितने कि आर्यावत्र्त देश में मिलते हैं और जो किसी देश में संस्कृत के बहुत पुस्तक होंगे सो आर्यावर्त्त ही से लिए होंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं। सो इस देश से मिश्र देश वालों ने पहिले विद्या ग्रहण की थी। उससे यूनान देश, उससे रूम, फिर रूम से फिरंग (अंगे्रज) स्थान आदि में विद्या फैली है। परन्तु संस्कृत के बिगड़ने से गिरीश (ग्रीस), लाटीन, अंगरेज और अरब देश वालों की भाषा बन गई हैं। सो इनमें अधिक लिखना कुछ आवश्यक नहीं क्योंकि इतिहासों के पढ़ने वाले सब जानते हैं और पता भी ऐसा ही मिलता है। एक गोल्ड्स्टकर साहेब ने पहिले ऐसा ही निश्चय किया है कि जितनी विद्या वा मत फैले हैं, भूगोल में, वे सब आर्यावर्त्त ही से लिए हैं। और काशी में वालेण्टेन् साहेब ने यही निश्चय किया है कि संस्कृत सब भाषाओं की माता है। तथा दाराशिकोह बादशाह ने भी यह निश्चय किया है कि जो विद्या है सो संस्कृत ही है क्योंकि मैंने सब देशों की भाषाओं का पुस्तक देखा तो भी मुझको बहुत सन्देह रह गए, परन्तु जब मैंने संस्कृत देखा तब मेरे सब सन्देह निवृत्त हो गए और अत्यन्त प्रसन्नता मुझको भई। और काशी में मान मन्दिर जो रचा है, उसमें महाराज सवाई मानसिंह जी ने खगोल के कला और यन्त्र ऐसे रचे थे कि जिस में खगोल का सब हाल देख पड़ता था। परन्तु आजकाल उसकी मरम्मत न होने से बहुत कला यन्त्र बिगड़ गए हैं तो भी कुछ-कुछ देख पड़ता है। फिर आजकाल महाराज सवाई रामसिंह जी ने कुछ मरम्मत स्थान की कराई है जो उस यन्त्र की भी करावेंगे तो कुछ रोज (काली तक) बना रहेगा, अन्यथा नहीं।

जबसे महाभारत युद्ध भया (हुआ) है उस दिन से आर्यावर्त्त को बुरी दशा आई है सो नित्य-नित्य बुरी ही दशा होती जाती है। क्योंकि उस युद्ध में अच्छे-अच्छे विद्वान् राजा और ब्राह्मण लोग प्रायः मारे गए। फिर कोई राजा पूर्ण विद्या वाला इस देश में नहीं भया। जब राजा, विद्वान् और धर्मात्मा नहीं भया, तब विद्या का प्रचार भी नष्ट होता चला (गया)। फिर कुछ दिन के पीछे आपस में लड़ने लगे, क्योंकि जब विद्या नहीं होती तब ऐसे ही बहुत प्रमाद होते हैं। जो कोई प्रबल भया, उसने निर्बल का राज छीन के उसको मारा। फिर प्रजा में भी गदर होने लगा कि जहां जिसने जितना पाया, उसका वह राजा वा जमींदार बन बैठा। फिर ब्राह्मण लोगों ने भी विद्या का परिश्रम छोड़ दिया। पढ़ना पढ़ाना भी नष्ट होता चला। जब ब्राह्मण लोग विद्याहीन होते चले, तब क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी विद्याहीन होते चले, केवल दम्भ, कपट और छल ही से व्यवहार करने लगे। फिर जितने अच्छे काम होते थे वे सब बन्ध (बन्द) होते चले। वेदादिक विद्या का प्रचार भी बहुत थोड़ा होता चला गया।

फिर ब्राह्मण लोगों ने विचार किया कि आजीविका की रीति निकालनी चातिहए, सो सम्मति करके यही विचार किया कि ब्राह्मण वर्ण में जो उत्पन्न होता है सोई (वही) देव है, सबका पूज्य है, क्योंकि पूर्ण विद्या से ब्राह्मण वर्ण होता है। यह वर्णाश्रम की सनातनी रीति है, सोई ऋषि मुनियों के पुस्तकों में भी लिखी है। सो विद्यादिक गुणों से तो वर्ण व्यवस्था नहीं रक्खी, किन्तु कुल में जन्म होने से वर्ण व्यवस्था प्रसिद्ध कर दी है। फिर जन्म ही से ब्राह्मणादिक वर्णों का अभिमान करने लगे। फिर विद्यादिक गुणों में पुरुषार्थ सबका छूटा, उसके छूटने से प्रायः राजा और प्रजा में मूर्खता अधिक-अधिक होने लगी। फिर उन्हीं से ब्राह्मण लोग अपने चरण और शरीर की पूजा कराने लगे। जब पूजा होने लगी तब अत्यन्त अभिमान उनमें होने लगा। उन विद्याहीन राजाओं को और प्रजास्थ पुरुषों को (अपने) वशीभूत ब्राह्मणों ने कर लिए। यहां तक कि सोना, उठना और कोस दो कोस तक जाना, वह भी ब्राह्मणों की आज्ञा के विना नहीं करना और जो कोई करेगा सो पापी हो जायगा। फिर शनैश्चरादिक ग्रह और नाना प्रकार के भूत प्रेतादिकों का जाल उनके ऊपर फैलाने लगे और वे मूर्खता के होने से मानने भी लगे। फिर राजा लोगों को ऐसा निश्चय सब लोगों ने मिल के कराया कि ब्राह्मण लोग कुछ भी करें, परन्तु इनको दण्ड न देना चाहिए। जब दण्ड नहीं होने लगा, तब ब्राह्मण लेाग अत्यन्त प्रमाद करने लगे और क्षत्रियादिक भी। फिर बड़े-बड़े ऋषि मुनि और ब्रह्मादिक के नामों से श्लोक और ग्रन्थ रचने लगे, उनमें प्रायः यही बात लिखी कि ब्राह्मण सब का पूज्य और सदा अदण्ड्य है। फिर अत्यन्त प्रमाद और विषयासक्ति से विद्या, बल, बुद्धि पराक्रम और शूरवीरता नष्ट हो गई और परस्पर ईर्ष्या (में वृद्धि) अत्यन्त हो गई। किसी को कोई (सहानुभूतिपूर्वक) देख न सके और कोई कोई के (अन्य किसी के) सहायकारी न रहे, परस्पर लड़ने लगे। यह बात चीन आदिक देशों में रहने वाले जैनों ने सुनी और व्यापारादिक करने के हेतु (जो) इस देश में आते थे सो (उन्होंने) प्रत्यक्ष भी देखी। फिर जैनों ने विचार किया कि इस समय आर्यावर्त्त देश में राज्य सुगमता से हो सकता है फिर वे (चीन से?) आए और राज्य भी आर्यावत्र्त में करने लगे। फिर धीरे-धीरे बोधगया में राज्य जमाके और (उसे) देश-देशान्तर में फैलाने लगे। सो वेदादिक संस्कृत पुस्तकों की निन्दा करने लगे और अपने पुस्तकों के पठन पाठन का प्रचार तथा अपने मत का उपदेश भी करने लगे। सो इस देश में विद्या के नहीं होने से बहुत मनुष्यों ने उनके मत को स्वीकार कर लिया। परन्तु कन्नौज, काशी, पर्वत, दक्षिण और पश्चिम देश के पुरुषों ने स्वीकार नहीं किया था, परन्तु वे बहुत थोड़े ही थे। फिर इन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था और वेदोक्त, कर्मों को मिथ्या-मिथ्या दोष लगा के अश्रद्धा और अप्रवृति बहुत करा दी। फिर यज्ञोपवीतादिक कर्म भी प्रायः नष्ट हो गया और जो-जो वेदादिकों का पुस्तक पाया और पूर्व के इतिहासों का, उनका प्रायः नाश कर दिया। जिससे कि इनको पूर्व अवस्था का स्मरण भी न रहे।

फिर जैनों का राज्य इस देश में अत्यन्त जम गया। तब जैन भी बड़े अभिमान में हो गए और कुकर्म, अन्याय भी करने लगे, क्योंकि सब राजा और प्रजा उनके मत में ही हो गए, फिर उनको डर वा शंका किसी की न रही। अपने मतवालों को अच्छे-अच्छे अधिकार और प्रतिष्ठा करने लगे और वेदादिकों को पढ़े तथा उनमें कहे कर्मों को करें, उनकी अप्रतिष्ठा करने लगे। अन्याय से भी उनके ऊपर जाल (मिथ्या आरोप) स्थापन करने लगे। अपने मत के पण्डित वा साधु की बड़ी प्रतिष्ठा करने लगे, सो आज तक भी ऐसा करते हैं। और बहुत स्थान-स्थान में बड़े-बड़े मन्दिर रच लिए और उनमें अपने आचार्यों की मूर्ति स्थापन कर दी तथा उनकी पूजा भी अत्यन्त करने लगे। सो जैनों के राज्य ही से मूर्ति पूजन चला, इसके आगे (पूर्व) न था। क्योंकि जितने ऋषि मुनियों के किए प्राचीन ग्रन्थ हैं, महाभारत युद्ध के पहिले जो कि रचे गए हैं, उनमें मूर्तिपूजन का लेशमात्र भी कथन नहीं है। इससे दृढ़ निश्चय से जाना जाता है इस आर्यावर्त्त देश में (इनसे पूर्व) मर्तिपूजन नहीं था, किन्तु जैनों के राज्य से ही चला (मूर्तिपूजा की प्रवृत्ति हुई) है।

आज के इस लेख में महर्षि दयानन्द ने इतिहास के अनेक तथ्यों का प्रतिपादन किया है जो अन्यत्र असुलभ है। मातृ भाषा गुजराती व संस्कृत के विद्वान होने तथा सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम संस्करण लिखने तक हिन्दी भाषा का अभ्यास न होने के कारण भाषा वर्तमान की अपेक्षा कुछ असहज है। पाठक इसे पढ़कर इतिहास के तथ्यों से परिचित होंगे। इसी प्रकार के अनेक तथ्यों से हम कल के लेख में परिचय करायेंगे। आशा है पाठकों का इससे ज्ञानवर्धन होगा और वह इसे सत्य व उपयोगी पायेंगे।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**